* ओ३म् *

स्वदेश-सेवक

स्वामी दयानन्द सरस्वती

लेखक—

श्रीयुत रामचरण जी विद्यार्थी

प्रकाशक

विश्व साहित्य भण्डार

मेरठ शहर।

प्रथमवार १०००] सन् १९२२. [मूल्य =)

ला० सीताराम के प्रबन्ध से

साहित्य मुद्रणालय, मेरठ में मुद्रित।

भूमिका

महर्षि दयानन्द के उपकारों पर दृष्टि डालने वाले इस बात को भली प्रकार जानते ह कि सैकड़ों वर्षों के बिगड़ हुये आचार विचार, वैदिक प्रथा को उनके जीवन के थोड़े ही फन्दन ने कितना उज्ज्वल बना दिया था। ऐसे समय में जब कि समस्त भारत में अन्धकार आच्छादित था महर्षि ने निर्द्वन्द होकर कार्य करना प्रारम्भ किया । मार्ग में अनेक कष्ट और बाधायें उपस्थित हुई परन्तु उन्होंने उनकी कुछ भी चिंता न की।

महर्षि पर पत्थर बरसते हैं गालियों की बौछारें पड़ती हैं दुराचारी अपमानित करने के हेतु उन पर मिथ्या दोषारोपण करते हैं परन्तु सूर्य्य की ओर धूल फेंकी हुई मुख पर आती है सभी कपटी दुराचारी उनके चरण सेवक बन गये एक दिन सभी को लज्जित होना पड़ा।

वास्तव मे धार्मिक हो अथवा राजनैतिक सुधार हो इन सबमें सुधारकों पर घोर विपत्तियां आया करती है। जो उन में पूर्ण उतरते है उन्हीं की जय होती है ।

आर्य्य समाज ने देश को सुधारने का बीड़ा उठाया था परन्तु अन्य देश तो दूर रहे अपने भारतवर्ष की दशा को भी न सुधार सका। यह सत्य है कि आर्य्य समाज की ज्योति ने बहुत कुछ प्रकाश फैलाया यह सब महर्षि की कृपा का फल स्वरूप है परन्तु वर्तमान समय में तो कुछ स्वार्थी आर्य्य समाजियों ने अपनी सीमा को बहुत ही संकुचित बना डाला।

निर्भयता के स्थान में भय हमारे हृदय में इतना घुस गया है कि सत्य बात को कहने तक में भय खाते हैं। शोक वह आर्य्य समाज के सत्यवक्ता कहां चले गये जिन्हों ने सत्य भाषण मे अपने शरीरों तक की बलि देदी ।

महर्षि को भय दिखलाया जाता है कि यदि आप सत्य कहेंगे और प्रत्येक बात का चाहे वह असत्य ही क्यों न हो खंडन करेंगे तो आप को अपने शरीर से

भी हाथ धोना पड़ेगा। परन्तु महर्षि ऐसे पुरुषों को समझाते हैं कि आत्मा अमर है मेरा प्रभु मेरे साथ है मुझे मृत्यु का भय नहीं।

आज भय के कारण बहुधा आर्य्य समाजी कहते हैं कि महर्षि को राजनैतिक बातों से कोई सम्बंध न था वे केवल एक धार्मिक प्रचारक थे। ऐसे सज्जनों के हेतु इस पुस्तक में महर्षि के ही विचार प्रगट किये गये हैं। ऐसे स्वार्थियों का भ्रम इस पुस्तक के पाठ से अवश्य दूर हो जायगा।

महर्षि के सम्बन्ध में अन्य वर्तमान नेताओं के शुद्ध और पवित्र विचार भी सूक्ष्म रूप से इस पुस्तक में दिये गये हैं। यदि आर्य्यजाती इस छोटी सी पुस्तक पर ध्यान देगी और अपने भय को निकालने का यत्न करेगी तो वास्तव में लेखक को बड़ी शान्ति होगी।

यदि आर्य्य समाज ने धार्मिक प्रचार के साथ २ राजनैतिक दशा पर ध्यान नहीं दिया तो उसे पछताना पड़ेगा। समय ऐसा भयानक उपस्थित हो गया है कि हम स्वतंत्रता के साथ धार्मिक प्रचार भी नहीं कर सकते।

हमारे देश की माताओं के साथ घृणित बर्ताव हो उनके साथ वर्णन न करने वाला अत्याचार और अन्याय हो। देश के बच्चे अकारण गोली का शिकार बन जाएं और इस पर भी हम धार्मिक प्रचार का दम भरते रहें इससे अधिक मैं नहीं कह सकता कि यह स्वार्थी मनुष्यों के लिये बहाना है वे मृत्यु से मुख छिपाये बैठे हुये हैं।

प्यारे आर्य्य समाजियों आओ! यह कर्मभूमि है कुछ कर्म कर के दिखलाओ! याद रक्खो बिना आहुति के यज्ञ की समाप्ति कदापि नहीं होगी। यह देश का बड़ा भारी यज्ञ हो रहा है इस में आहुति देना सभी का कर्तव्य है। स्मरण रक्खो कि यदि आप इसी प्रकार मुंह छिपाए रहे तो आपकी सन्तति आप को घृणा की दृष्टि से देखेगी।

निवेदक—

स्वदेश प्रेमी

* ओ३म् *

स्वदेश सेवक

स्वामी दयानन्द सरस्वती

" महर्षि दयानन्द के लिए मेरा मन्तव्य यह है कि वे हिन्द के आधुनिक ऋषियों में, सुधारकों में, श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनका ब्रह्मचर्य, उनकी विचार स्वतन्त्रता, उनका सब के प्रति प्रेम, उनकी कार्य-कुशलता इत्यादि गुण लोगों को मुग्ध करते थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत ही पड़ा है। "

—मोहनदास कर्मचन्द गान्धी।

* ओ३म् *

दयानन्द का सन्देश ।

'मनुष्य उसी को कहना कि मनन-शील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्म्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों। उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण; और अधर्मी चाहे चक्रवर्त्ती सनाथ महा बलवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक होसके वहां तक अन्याय-कारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले जावें परन्तु इस मनुष्य-रूप धर्म से प्रथक् कभी न होवे'।

(सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ६२४)

"आर्य्यावर्त्त देश के इतिहास में ऐसे अनेक दृष्टान्त पाये जाते हैं कि जब आर्त्त भारत-सुधार के लिये महात्माओं का जन्म हुआ हो।"

भगवान दयानन्द का जन्म भी एक परिवर्त्तन के युग में हुआ। इतिहास के विद्यार्थी अच्छी प्रकार जानते हैं कि उस समय भारत में एक बड़ा भारी विप्लव मचा हुआ था। राष्ट्रीय शक्ति किसी एक सूत्र में आबद्ध न थी। सर्वत्र भिन्न २ नवीन शक्तियां अपने यौवनकाल पर लहरा रहीं थीं। महाराष्ट्र का महा बल शक्ति-सम्पन्न अंग्रेजों से भिड़ने को कटिबद्ध होचुका था। पञ्जाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह ने स्वदुंदुभिनाद से उत्तरीय भारत के कोने कोने को प्रतिध्वनित कर दिया था। समरशालिनी सेंधिया शक्ति की स्वाधीनता का सूर्य अस्ताचल का आश्रय ले रहा था। ब्रह्मदेश के स्वाधीनताकाश को परतन्त्रता के मेघमण्डल ने आच्छादित करदिया था। लुटेरों के अत्याचार, अहर्निश युद्ध के अनाचार से सर्वत्र अशान्ति के समाचार कर्णगोचर होते थे। देशवासी इस अशान्तियुग में भयभीत और शंकित चित्त हो जीवनकाल की गणना उंगलियों पर कर रहे थे।

भारत में सामाजिक दशा भी अत्यन्त शोचनीय थी। ऋषिभूमि भारत माता की गोद कुरीतियों की क्रीड़ाभूमि बन गई थी। विधवाओं के विलाप, छोटी २ कन्याओं के आलाप, और दीन दुखित जनों के प्रलाप से भारत का आकाशमण्डल

भयानक प्रतीत होता था। विदित होता था कि अबलाओं के विलाप धूम से ही मेघमण्डल की रचना हुई है। पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष ने अपना प्रभुत्व घर घर जमा लिया था।

भारतवर्ष को प्राचीनकालीन सब राष्ट्र धर्मगुरु मानते थे; किन्तु आर्य्य जाति के किंकर्त्तव्यविमूढ़ और विलास-प्रिय हो जाने पर सरस्वती पुनः समुद्र में अन्तर्धान होगई। अविद्यान्धकार में अनेक महापुरुषों ने छोटे २ दीपक टिमकाकर भारत को प्रकाशमान करना चाहा, किन्तु सब प्रयत्न निष्फल हुआ। क्या सूर्य के समान भी दीपक प्रकाश कर सकते हैं. वैदिकधर्म रूपी सूर्य के अस्त होने पर नाना मतमतान्तर रूपी दीपक समूह क्या भारत को सन्मार्ग दर्शा सकता था ? परिणाम यह हुआ कि चोरों ने अपनी चौकड़ी सहित भारत को लूटना प्रारम्भ कर दिया। ईसाई धर्म के पादरी लोग आर्यजनता को लूटने में सबके अग्रगामी थे, उन्होंने भगवती भागीरथी और सागर के तटपर स्वदुर्ग निर्माण कर सर्वोच्छेदकारी शस्त्रनिपात से पौराणिक गढ़ों को छेदन कर समूलोच्छेदन करने की मन में ठान ली। आर्यजाति ने स्वास्तित्व को भुलाकर अपनी सभ्यता को अपमानित कर विदा कर दिया। आर्यजाति के रीति रिवाज और सभ्यता का आकाश पश्चिमी सभ्यता की घनघोर घटाओं से घिर गया।

इस शोचनीयावस्था में प्रभु दयानन्द का जन्म सम्वत् १८८१ में गुर्जर प्रान्तस्थ मोरवी नगर में हुआ। बाल-काल

में ही गृह-बन्धन का परित्याग कर दयानन्द सम्वत १९१० तक आत्म-प्रेम-प्रमादी याचना के निमित्त लगन की झोली हाथ में लिए श्रद्धापूर्वक कुटी २ और द्वार २ पर चक्कर लगाने लगे। अन्ततोगत्वा मथुरा में श्री० स्वामी विरजानन्द का चरणाश्रय प्राप्त किया। लगभग २½ वर्ष तक गुणागणगरिमा से मोहित भ्रमर प्रफुल्ल-पद्म पर बैठा रस पान करता रहा। रसपान से परितृप्त हो कर मधुप पद्म से उऋण होना चाहता था। कमल कोई साधारण कमल नहीं था। अपने प्रेमी को देख कर उसके हृदय में स्वकान्तिप्रसार से संसार को सुन्दर बनाने की लालसा उत्पन्न हुई। विरजानन्द जी दयानन्द से बोले "वत्स! भारत देश में दीन हीन जन अनेक विध दुःख पारहे हैं। जाओ, उनका उद्धार करो। मतमतान्तरों के कारण जो कुरीतियां प्रचलित हैं, उनका निवारण करो। आर्यजनता की बिगड़ी हुई दशा को सुधारो। आर्यसन्तान का उपकार करो। ऋषि शैली प्रचलित करके वैदिक ग्रन्थों के पठन पाठन में लोगों को प्रवृत्तिशील बनाओ। गङ्गा यमुना के निरन्तर गतिशील प्रवाह की भांति लोकहित कामना से क्रियात्मक जीवन बिताओ। प्रिय पुत्र! गुरु दक्षिणा में यही वस्तु मुझे दान करो अन्य किसी भी सांसारिक पदार्थ की मुझे चाह नहीं है।"

"श्री महाराज देखेंगे कि उनका प्रिय शिष्य इन आज्ञाओं का किस प्रकार प्राणपण से परिपालन करता है।" यह कह कर श्री० दयानन्दजी ने कुरुक्षेत्र में पदार्पण किया। इस समय

सं० १९१४ की भयङ्कर सैनिक राजनैतिक युद्धाग्नि पर जल पड़ गया था। यत्रतत्र सुलगती हुई चिनगारियां ही दृष्टिगोचर होती थीं। महारानी विक्टोरिया का शान्ति घोषणानाद भी चतुर्दिश गुंजायमान हो चुका था। अंग्रेज़ी रीति नीति का प्राबल्य था।

महर्षि दयानन्द एक अनुभवी वैद्य थे। उन्होंने भारत के रोग को पहिचाना। वह आर्यजाति के सम्पूर्ण दुःखों का कारण वैदिकधर्म विमुखता ही समझते थे। निरन्तर यवनराज्य में आर्यजाति को धार्मिक स्वतन्त्रता से वंचित रखने का परिणाम यह हुआ कि आर्यजाति मतमतान्तर-रूपी मगर के मुख में चली गई। शङ्कर रामानुजादि महात्माओं ने नास्तिकता रूपी राहु ग्रसित आर्यजाति में उपासना का प्रचार किया। तत्पश्चात् भारत के लगभग सभी बड़े बड़े महात्माओं और धार्मिक नेताओं ने उपासना काण्ड को इतना प्रधानरूप देदिया कि ज्ञान काण्ड भारत में प्रायः लुप्त ही हो चला। ज्ञानकाण्ड के लुप्त हो जाने पर सर्वत्र अन्ध-विश्वास का राज्य स्थापित हो गया। धर्म गुरुओं ने गुरुडम रच कर जनता को अन्धाधुन्ध लूटना आरम्भ कर दिया। भिन्न भिन्न मतमतान्तरों के सैनिकों ने पारस्परिक युद्ध की दुन्दुभि बजा दी। पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष के धूम में लोगों का दम घुटने लगा। जिधर दृष्टि पात करो, शैव-वैष्णव, वैष्णव-शाक्त आदि मतों के युद्ध मचे। भगवान दयानन्द ने ज्ञानकाण्डास्त्र तथा वेद धर्म से सुसज्जित हो कर सुशिक्षित सुनिपुण सेनापति की भांति रणक्षेत्र

में पदार्पण किया । परहित कामना उनकी हार्दिकाभिलाषा थी । वह रण रंग में अपनी वीरता का परिचय देकर साम्प्रदायिक सैनिकों के उत्पात को उपशमन करने में प्रवृत्त हुए । अनेक शास्त्रार्थ किये । सहस्रों विद्वानों को पराजित किया । काशी जैसे सुदृढ़ गढ़ में वैदिक धर्म की पताका प्रकाशित की । बड़े बड़े दिग्गजों ने मृगराज के सम्मुख शिर अवनत किया । यत्र तत्र वैदिक धर्म का नाद गूंजने लगा । मतमतान्तरों की कन्दराएं कांपने लगीं । धार्मिकसग्राम में केवल विजय लाभ करना ही प्रभु दयानन्द का मुख्योद्देश्य नहीं था । उसके हृदय में भारत को सर्वोपरि बनाने और आर्यजाति के दुःख मिटाने की लग्न लगी थी । वह रात दिन यही चिन्ता किया करते थे कि किस प्रकार इस आक्रान्तक आर्यजाति का म्लान मुख उज्ज्वल होगा।

स्वामी दयानन्द स्वराज्य के कट्टर पक्षपाती थे । जिस समय भारतीयों की राजनीति नव-जात बालिका थी, उस समय भी दयानन्द ने स्वतन्त्रता की ध्वनि ध्वनित की थी। " स्वामी दयानन्द का एक २ शब्द चाहे उसे सत्यार्थ प्रकाश में पढ़िये, चाहे आर्याभिविनय में अवलोकन कीजिये, चाहे वेद भाष्य में देखिये, राजनैतिक स्वाधीनता की अभिलाषा से परिपूर्ण है । " * ऋषि जानते थे कि परतन्त्रता दासता है । " स्वराज्य का गौणार्थ दासत्व से छुटकारा पाना है× । "

* लाला लाजपतराय ।

× प० शिवशङ्कर जी काव्यतीर्थ ।

दासत्व में दुःख है ! क्लेश है !! और पीड़ा है !!! भगवान दयानन्द स्वयं सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ २३७ पर इस प्रकार स्पष्टतया लिखते हैं, "अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राज्य स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देश वासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं। कोई कितना ही करे किन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।

यह है आदर्श स्वराज्य का प्रतिपादन ! दयानन्द ने जिन शब्दों में स्वराज्य की महत्ता का वर्णन किया है, उससे स्पष्ट प्रगट होता है कि उनके विशाल हृदय में भारत की प्रजा का हित कूट कूट कर भरा था। दयानन्द की आंखें "स्वतन्त्र भारत" देखने को तरसती थीं। वह लिखता है कि चाहे विदेशियों के राज्य में स्वधर्म प्रचार की कितनी स्वतन्त्रता क्यों न हो, चाहे विदेशी राजा स्वजाति का पक्षपात भी न कर "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धान्त का परिपालन करे, चाहे पक्षपात

शून्य होकर प्रजा पर माता पिता के समान कृपा न्याय, और दया करे, किन्तु ऐसा रहम दिल, मुंसिफ, लेकिन दूसरे मुल्क का राजा, स्वदेशीय राजा से उत्तम कदापि नहीं। यदि कोई कहे कि ऋषि दयानन्द ने यह केवल एक सार्वभौम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है वर्तमान राजनीति (Current Politics) पर कोई आक्षेप नहीं किया तो उनकी बड़ी भारी भूल है। दयानन्द के लिए ऐसे शब्द कहना पाप करना है! कृतघ्न बनना है!! ऋषि स्पष्टतया वर्तमान राज्य की आलोचना करते हैं। अपने उपरोक्त लेख में "अब" शब्द का प्रयोग इसका ज्वलन्त प्रमाण है। ऋषि दयानन्द स्पष्ट वक्ता थे। जितने जोर के साथ उन्होंने स्वराज्य (Homerule) का प्रतिपादन किया उसकी समानता आज तक भारत के राजनैतिक इतिहास में नहीं मिली। आज हम संसार को चैलेंज देते हैं कि स्वराज्य का ऐसा स्पष्ट प्रतिपादन किसी अन्य नेता द्वारा दिखलाओ। उनके कुछ शिष्यों का किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो कर ऋषि के विरुद्ध अपने मन माने सिद्धान्त मान कर स्वार्थ साधन करना ऋषि की महानता पर बट्टा नहीं लगा सकता। दयानन्द सिद्धान्त-ज्योति चमकेगी और भारतान्धकार में प्रकाश करेगी। "समय आवेगा जब भारत की भावी सन्तति अपने जातीय मन्दिरों में स्वायत्त शासन की देवी का पूजन करने से पूर्व, उसे पहिले पहल आहूत करने वाले देव स्वरूप दयानन्द का प्रथम अर्चन किया करेगी।"*

---

* स्वामी सत्यानन्द जी।

ऋषि की निर्भयता।

महाराज ने बृटिश भारत के प्रान्तों में राजा प्रजा धर्म पर अनेक व्याख्यान दिये। वह अपने व्याख्यानों की ओजस्विनी भाषा में प्रत्येक विषय का स्पष्टतया प्रतिपादन करते थे। अन्याय, अत्याचार, और कुरीतियों का ऐसा कट्टर समालोचक मिलना असम्भव है। ऋषि दयानन्द को राय बहादुरी की चिन्ता नहीं थी। चाटुकारी का चसका नहीं लगा था। वह जानते थे कि ऐसी अन्यायी गवर्नमेंट के विद्यमान रहते भारत का कभी उद्धार नहीं हो सकता। स्वराज्य ही उसकी महौषध है। राजाओं के सामने तथा अंग्रेजों की विद्यमानता में वे सत्य के प्रकाश से कभी नहीं घबराये। उनके हृदय में किंचिन्मात्र भी भय का आवेश नहीं था। वह स्वयं कहते थे कि "एक स्थान में हमारा भाषण सुनकर वहांके कलेक्टर ने कहा कि आपके भाषण पर यदि लोग चलने लग जायं तो इसका परिणाम यह निकलेगा कि हमें अपना बदना बोरिया बांधना पड़े।" अब आप जान सकते हैं कि ऋषि किस प्रकार निरपेक्षभाव से समालोचना किया करते थे। कैसी तीव्र टीका टिप्पणी चढ़ाते थे। परन्तु ऐसी विचित्र स्थिति में भी भगवान् दयानन्द ऐसे अलौकिक गुणों से आभावान थे। जिनके कारण उस समय के सारे बुद्धिमान विद्वानों के सम्मान-पात्र बने थे। ऋषि दयानन्द से वृथातिशयोक्ति नहीं आती थी। जो वस्तु जैसी होती है, उसको स्पष्ट वैसा कहने में कभी भी नहीं हिचकते थे। निन्दा, स्तुति उनके लिए समान

थी। भले को भला बुरे को बुरा कहना स्तुति और इसके विरुद्ध आचरण करना निन्दा है यही सत्य सिद्धान्त है। ऋषि महर्षि प्रणीत व्यवस्था है।

जेल का भय।

"सत्यमेवजयतेनानृतम्" सिद्धान्त में ऋषि का परम विश्वास था। वह सत्य के पूर्ण पक्षपाती थे। सत्यवादिता के साक्षाद्वतार थे। धार्मिक कार्यक्षेत्र में कर्म करते कर्णवास में कर्णसिंह की क्रूर कृपाण से नहीं कांपे। स्पष्ट उत्तर देदिया, "आत्मा अमर है, अविनाशी है, इसका कोई हनन नहीं कर सकता।" अनेक स्थानों पर ऋषि से कहा जाता था कि इस सत्यवादिता पर जेल हो जायगी, कारावास का दण्ड मिलेगा। किन्तु दयानन्द का एक मात्र उत्तर यही था कि यदि तोप के मुख से भी मुझ को बांध दिया जावेगा तो भी दयानन्द के हृदय से "सत्यमेवजयते" के शब्द ही सुनाई देंगे। तब बताइयेगा कि वह किसी अन्यायी पुरुष का, चाहे वह राजा ही क्यों न हो, किस प्रकार अत्याचार सहन कर सकते थे। स्वामीजी स्वयं सत्यार्थप्रकाश के जैन-मत खण्डन प्रकरण में जैनियों के विषय में यह सम्मति प्रगट करते हैं कि 'ये जैन लोग राज्य के बड़े खुशामदी, झूठे, और डरपोक हैं'। क्या झूठी बात भी राजा की मान लेनी चाहिये ?"* धन्य प्रभु दयानन्द ! तुमने पुनः आर्य जनता को जागृत कर दिया।

* सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४६२।

सहस्रों वर्षों से यवन राजाओं द्वारा अपमानित असह्य क्लेश भोग रही थी; तुमने एक महौषध देकर रोग निवृत्ति के उपायों को बतला दिया। राजा की झूठी बात कभी नहीं माननी चाहिये। ऐसा करना मनुष्य धर्म के विरुद्ध आचरण करना है। भगवान् दयानन्द खुशामद के कट्टर विरोधी थे। "जी हुजूरी" की छूत उनको छू तक नहीं गई थी। वह मनुष्य महा नीच है जो स्वार्थ साधन के लिये परहित नाश करने को सदैव उद्यत रहता है। ऋषि दयानन्द इस दोष से सर्वथा मुक्त थे।

विदेशी राज्य का कारण।

भगवान् दयानन्द ने केवल अपने लेख वा व्याख्यानों द्वारा ही स्वराज्य प्राप्ति का प्रयत्न नहीं किया। कोरी बातें बनाने वा लिखने से कोई कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकता जब तक कोई क्रियात्मक उद्योग प्रयोग में नहीं लाया जाय। स्वामी जी जानते थे कि "विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने का कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना, बाल्यावस्था में अस्वयम्बर विवाह, विषयासक्ति कुलक्षण, वेद-विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं, तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है" ×। अतः स्वामी जी चाहते थे कि राजा महाराजों की सभा करके सब आर्यों में एक धर्म और एकता का तागा पिरो दिया जाय; किन्तु दुर्भाग्यवशात् वह शुभ दिन देखने

× सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २८०।

का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका अर्थात् स्वामी जी को अनेक कारणों से सफलता प्राप्त नहीं हुई।

भारतीय भूपालों से भारत भूमि के विशेष भक्ति का परिचय न पाकर एक दिन महाराज ने भिन्न २ मतों के आचार्यों और जातीय विभागों के नेताओं की एक सभा आमंत्रित की; जिसके निमन्त्रण पर पंजाब प्रजा के प्रसिद्ध प्रेमी कन्हैयालाल जी अलखधारी, श्रीयुत नवीनचन्द्र राय, श्रीयुत हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, सरसैयद अहमद, श्री केशवचन्द्र सैन, और इन्द्रमणि जी पधारे। सातवें श्री महर्षि सम्मिलित हुए। यह बात स्वभावत: समझ में आ सकती है कि आर्यावर्त की उच्च आत्माओं ने उस परिषद में भारत सुधार के अनेक साधन सोचे होंगे। इस अभूतपूर्व सभा में महर्षि ने यह प्रस्ताव पेश किया कि "हम भारतवासी सब परस्पर एकमत हो कर एक ही रीति से देश का सुधार करें तो आशा है कि भारत-देश सुधर जायगा"। किन्तु कतिपय मौलिक मन्तव्यों में मतभेद होने के कारण सब एकता सूत्र में आबद्ध नहीं हो सके।

श्री स्वामी जी महाराज भारत की दरिद्रता को अनुभव करते थे। उनसे भारतवासियों की दलित, दीन दशा छिपी नहीं थी। देश-देशान्तर में भ्रमण कर. द्वीप-द्वीपान्तर के समाचार श्रवणकर उनका शरीर रोमाञ्चित होजाता था। दयालु हृदय के लिये दीन, दुखित, अकाल पीड़ितों का करुणा क्रन्दन सुनकर मौनावलम्बन सर्वथा असम्भव था। दयानन्द

को वे दिन स्मरण थे जब भारत धन-धान्य पूर्ण था। आर्या-वर्त्तीय नर नारी अहर्निश सुखमय जीवन व्यतीत करते थे। सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य था। किन्तु वर्त्तमानकाल में आर्यों का कातर क्रन्दन सुनकर उनका हृदय फटा जाता था। स्वामी जी जानते थे:—वसुन्धरा भारत माता सजला है, सफला है, उर्वरा तथा शस्य शालिनी है। पर्याप्त अन्न उत्पन्न होसकता है, किन्तु तो भी चतुर्दिश यत्रतत्र "बुभुक्षितोऽहं" "बुभुक्षितोऽहं" के शब्द सुनाई पड़ते हैं। इन सब आपत्तियों का क्या कारण होसकता है ? इस महत्त्वशाली प्रश्न पर विचार करते हुए ऋषि स्वयं लिखते हैं:—"एक गाय के शरीर से दूध, घी, बैल, गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में चार लाख पचहत्तर हज़ार छः सौ मनुष्यों को सुख पहुंचता है। वैसे पशुओं को न मारें न मारने दें। देखो ! जब आर्य्यों का राज्य था तब ये महो-पकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे। तभी आर्यवर्त्त अन्य भूगोल देशों में मनुष्यादि प्राणी बड़े आनन्द में वर्तते थे, क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की बहुताई से अन्न, रस पुष्कल प्राप्त होते थे।"×

गोरक्षा की आवश्यकता को अनुभव कर ऋषिवर चुप चाप नहीं बैठे। उन्होंने सैकड़ों व्याख्यान गोरक्षा विषय पर दिये। सहस्रों मुसलमानों और ईसाइयों को गोरक्षा का लाभ समझाया। ऋषि ने जब देखा कि केवल इन कोरी बातों से

× सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २८१

काम नहीं चल सकता तो निश्चय किया कि गोरक्षा पक्ष-पोषक भारतवासियों के हस्ताक्षर कराकर महारानी विक्टोरिया से गोवध निषेध की प्रार्थना की जाय। ऋषि दयानन्द की राज-नीतिज्ञता का परिचय उनके इस महान् प्रयत्न से लग सकता है। जब गोवध-निषेध विषयक कोई राज-नियम नहीं था तो महर्षि दयानन्द ने राजनीति में हस्तक्षेप कर राज्य की त्रुटि दिखलाकर राज्याधिकारियों को सन्मार्गावलम्बन का उपदेश दिया। ऋषि ने बतलाया कि "गाय आदि पशुओं के बध से दूध, घी कितने महँगे होगये हैं। किसानों की कितनी बड़ी हानि होरही है, जिसका फल राजा-प्रजा सभी भोगरहे हैं।" × किन्तु जहां अभक्ष्य-भक्षी अन्यायियों का अधिकार हो वहां कभी ऐसे लोक-हित के प्रस्ताव पास हो सकते हैं? क्रूर के हृदय में कभी दया का आविर्भाव हो सकता है? ऋषि दयानन्द स्व-प्रयत्न में कृतकार्य न होसके, भारत की भावी सन्तति को यह कार्य्य समर्पण कर गये। ऋषि का हृदय ऐसे अनार्य राज्य को देख कर कांप उठा। उसके मुख से केवल यही शब्द निकले:—"जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है"।* जिस समय भारतवासियों के मस्तिष्क में "स्वराज्य" का ध्यान भी नहीं रहा था। "स्वतन्त्रता" का शब्दोच्चारण भी करना

× गोरक्षा पर दयानन्द का भारतवासियों के नाम पत्र। *सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २६२

जेल की हवा खाना था। वर्तमान राज्य-प्रणाली के विरुद्ध एक शब्द भी मुख से निकालना घोरापत्तिओं का आह्वान करना था। उस समय स्वतन्त्र सन्यासी स्वामी दयानन्द ने अन्याय की कड़ी समालोचना की थी। वह निरन्तर अन्याय अत्याचार और क्रूरता को नहीं देख सका। क्या वैदिक धर्मानुयायी एक आर्य सन्यासी पीड़ित प्रजा पर सरासर अन्याय होता देख कर चुपचाप रह सकता है? ऋषि ने परहित कामना के कारण मोक्षानन्द को त्याग दिया, राजाओं ने राज्य देने का लोभ दिया, किन्तु दयानन्द ने लात मार दी। उसके हृदय में एक मात्र परोपकार करने की प्रबलेच्छा थी! महाराज ने जिस भाव से दूसरे मतों का खण्डन किया, राज्य-प्रणाली की समालोचना की, उनका केवल यही अभिप्राय था कि सर्वत्र सत्य का प्रकाश हो। मनुष्य सत्य पथानुगामी बन कर पारस्परिक प्रेम-पीयूष पान कर आनन्द प्राप्त करें। ऋषि का हृदय पक्षपात शून्य था। ऋषि साम्यवाद के स्वरूप थे। वे स्वयं लिखते हैं:—"यद्यपि मैं आर्य्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूं तथापि जैसे इसके मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात किये बिना यथातथ्य प्रकाश करता हूं। वैसा ही वर्ताव दूसरे देश के मतवालों के साथ करता हूं। मेरा मनुष्यों की उन्नति का व्यवहार जैसा स्वदेशियों के साथ है वैसा ही विदेशियों के है।× " भगवान दयानन्द को संसार में शान्ति

× सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ८।

युग का सञ्चार करना अभीष्ट था। उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये दयानन्द दूर दूर भटकता फिरा। सहस्रों कष्टों और आपत्तियों को सहन करते हुए भी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुआ। यवन-मत की समीक्षा की, ईसाई धर्म की तीव्रालोचना की और पौराणिक धर्म का खण्डन कर सत्य वैदिक-धर्म का मण्डन किया। सत्य प्रकाश करने में कभी भी न हिचके। यदि वर्तमान राज्य की त्रुटियों को दर्शाया, अन्याययुक्त राज्य प्रबन्ध के दोषों को बताया तो उसके हृदय में यही कामना थी कि मनुष्य मनुष्यता का व्यवहार करें। 'जो २ भलाई हैं वही भलाई और जो बुराई हैं वही बुराई सब को विदित हो जावें, न कोई किसी पर झूठ चला सके और न सत्यको रोक सके*। ऋषि एक आदर्श सन्यासी थे। यदि वह प्रचलित राज्यप्रणाली के प्रत्येक पापाचरण को प्रदर्शित नहीं करते तो सम्प्रति संसार ऋषि के सन्मुख अपना शिर किस प्रकार अवनत कर सकता था। सत्य के आश्रय भूत होकर ही ऋषि यथार्थ प्रदर्शित करने में सदैव तत्पर रहे।

प्रचलित राज्य का कुप्रबन्ध देख कर ऋषि से चुपचाप नहीं रहा गया। प्रजा को अनेक प्रकार पीड़ित देख कर उसका हृदय हिल गया। वह स्वयं सत्यार्थ प्रकाश में इस प्रकार उल्लेख करते हैं:—× 'जब से पुलिस का प्रबन्ध हुआ है तब से बहुधा

* सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ५५०

× प्रथम संस्करण पृष्ठ ३८६

अन्यथा व्यवहार ही सुनने में आता है और गाय बैल भैंस छेरी और मेंढी आदिक मारे जाते हैं। इस से प्रजा को बहुत क्लेश प्राप्त होता है। भला ऐसा कौन देश हितैषी हो सकता है जो रात दिन देश की दुर्दशा और अनादर को संतोष पूर्वक देखता रहे। जहां पर विदेशी राज्य आचार, विचार, और व्यवहार का प्रचार है; अनाचार अत्याचार का प्रसार है स्वदेश और स्वदेशी का तिरस्कार है; वहां पर किसके कपोल अश्रुधारा से प्लावित न हो जायंगे। दयानन्द उन महान् पुरुषों में से एक था जो मनुष्य जाति का अपमान सहन नहीं कर सकते। भारत हित की लग्न ऋषि के हृदय में सर्वत्र लगी रहती थी। ऋषि देशोन्नति के लिये नाना प्रकार के उपयोगी साधनों पर विचार किया करते थे। भारत के रोग को ऋषि ने पहिचान लिया था। रोग का निदान ऋषि को पूर्ण प्रकार ज्ञात हो चुका था। ऋषि ने भारतोद्धार-कारक उस औषध का भी अन्वेषण कर लिया था जिसको पानकर भारत भविष्य में स्वतन्त्रता पर स्वामित्व प्राप्त करेगा।

एक दिन पंड्या मोहनलाल विष्णुलाल जी ने ऋषि से निवेदन किया कि 'भगवन्! भारत का पूर्ण हित कब होगा? यहां जातीय उन्नति कब होगी'? दिव्य दृष्टिवान भगवान् दयानन्द ने उत्तर दिया कि 'एक धर्म, एक भाषा, और एक लक्ष्य बनाये बिना भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति का होना दुष्कर कार्य है। सब उन्नतियों का केन्द्र स्थान ऐक्य है। जहां

भाषा-भाव और भेष में एकता आ जाय वहां सागर में नदियों की भांति सारे सुख एक एक करके प्रवेश करने लग जाते हैं। मैं चाहता हूं देश के राजे महाराजे अपने शासन में सुधार और संशोधन करें। अपने राज्यों में धर्म, भाषा और भावों में एकता उत्पन्न करदें। फिर भारत में आप ही आप सुधार हो जायगा'।

(जहां पर ऋषि दयानन्द एक भाषा, स्वराज्य प्राप्ति रूप एक लक्ष्य और स्वतन्त्रता-रूप भावों का भारत की भलाई के लिये प्रतिपादन करते हैं, वहां सब मनुष्यों को धर्म-सूत्र में बद्ध होने का उपदेश देते हैं। भारत की राजनैतिक उन्नति को लक्ष्य में रखते हुए धर्म के ऐक्य का प्रथम उपदेष्टा भगवान् दयानन्द था। अन्य राजनैतिक नेताओं ने धर्म का आश्रय नहीं लिया। उनके मन्तव्यानुसार राज-नीति और धर्म भिन्न २ वस्तु हैं। किन्तु आचार्य दयानन्द राजनीति और धर्म को विरुद्ध नहीं मानते थे। राजनीति का दूसरा नाम राज-धर्म प्रसिद्ध है। ऋषि दयानन्द इसको अनुभव करते थे कि बिना एक वैदिक-धर्मी बने तथा आर्य्य जाति में बिना पुनः प्रविष्ट हुए क्षणिक स्वराज्य भले ही मिल जावे किन्तु वास्तविक सच्चा स्वराज्य कोसों दूर है। श्री पण्ड्या जी ने जब ऋषि से प्रार्थना की कि 'जब आपका उद्देश्य और आदर्श एकता सम्पादन करना है तो आप मतमतान्तरों का कठोर खण्डन क्यों करते हैं? इससे तो उलटा और वैर विरोध और वैमनस्य बढ़ता है।'

महाराज ने उत्तर दिया कि 'एक तो मेरा धार्मिक लक्ष्य सार्वजनिक है, उसे संकुचित नहीं किया जा सकता। दूसरे भारतवासी लम्बी तान कर ऐसी गहरी नींद में सो रहे हैं कि मीठे शब्दों से तो आंख तक खोलने को भी समुद्यत नहीं होते। सुधार का तो ये नाम तक नहीं लेते। कुरीतियां और कुनीतिओं के खण्डन रूप कड़े कोड़े की तड़ातड़ ध्वनि से भी यदि ये जग जायं तो ईश्वर को कोटि २ धन्यवाद दूंगा।'

'पण्डया जी! कोई देश जन शून्य नहीं हो जाया करता लोग तो बने ही रहा करते हैं। परन्तु धर्म गुरुओं और सामाजिक नेताओं की असावधानी, प्रमाद और आलस्य से भावना भाव, और भाषादि एकता के चिन्ह बदल जाते हैं। जाति के आचार, विचार परिवर्तित हो जाते हैं। रहन सहन के ढंगों में भेद आजाता है। ठीक ऐसा ही समय अब इस देश पर उपस्थित है। यदि संभाला न गया तो आर्य जाति परिवर्तन के चंचल चक्र पर चढ़ कर अतिशय उतावली से, अपने पूर्व पवित्र स्वरूप को परिवर्तित कर डालेगी। इसके पिछले प्रमाद के कारण करोड़ों मनुष्य मुसलमान बन गये। अब प्रति दिन सैकड़ों ईसाई होते चले जा रहे हैं। ऐसे समय में तो अपने सधर्म बन्धुओं को कड़े हाथ से उनकी चोटियां भी पकड़ कर जगाना होगा। भाई! यह कटु कर्तव्य मैं अपने स्वार्थ के लिये तो पालन नहीं कर रहा हूं। मुझे तो इसके कारण अवहेलना, निन्दा कुवचन ईंट पत्थर और विष ही स्थान स्थान

पर मिलता है। परन्तु बन्धु-वात्सल्य की भावना मुझे विपत्तियों के विकट और जटिल जाल में भी समाज-सुधार के के लिये प्रोत्साहित कर रही है×'।

लगभग सम्पूर्ण भारत के भिन्न २ प्रसिद्ध प्रदेशों में वैदिक-धर्म की दुंदुभि बजा, सत्य का प्रकाश कर, और जातीय-जीवन में जागृति ज्योति जगमगा भगवान् दयानन्द ने भारतीय राजाओं के सुधार का बीड़ा उठाकर राजस्थान में प्रवेश किया। नैराश्य निद्रा में पैर फैलाये सोते सिंहों को भगवान दयानन्द ने वेदामृत पान कराकर जागृत किया। प्रजा रञ्जनार्थ प्रिया-पत्नी को प्रेम के साथ बनवास देनेवाले, धर्म के नाम पर मर मिटनेवाले स्वप्रण का पालन करने वाले—"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवशि नरक अधिकारी।" के मन्त्र को जपने वाले क्षत्रियों की सन्तान को उत्साह-हीन, दीन, मलीन और पराधीन देख बालब्रह्मचारी दयानन्द ने पुनः प्राचीन भारत के गौरव का ध्यान दिलाया। राजस्थान की पुण्यभूमि में पुनः भारत की प्राचीन प्रथा का प्रचार होने लगा। अनेक राजे महाराजों को महर्षि दयानन्द प्रजारञ्जन, कर्त्तव्यपालन, शासन सुधारादि अनेकानेक विषयों पर व्याख्यान देते राजस्थान में पर्यटन करने लगे।

भगवान् दयानन्द की यह हार्दिक अभिलाषा थी कि राजस्थान के राज्यों में वैदिकधर्म का प्रचार हो। समस्त राजे

× श्रीमद्दयानन्द प्रकाश से उद्धृत

महाराजे वैदिक धर्मानुयायी हो कर तदनुकूल आचरण कर अपने राज्यों में सुव्यवस्था का प्रबन्ध करें। जनता की रक्षा और प्रजा की मङ्गल कामना प्रत्येक राजा का परम कर्त्तव्य है। वैदिक ग्रन्थों में राजा को एक रूप में ईश्वर का प्रतिनिधि वर्णन किया है। ऋषिवर पुनः उसी राज्यप्रणाली को भारत में प्रचलित करना चाहते थे। ऋषि को वर्तमान गवर्नमेण्ट से कोई आशा नहीं थी। वह सत्य सार्वभौम सिद्धान्त को समझ गये थे कि "स्वराज्य के सम्मुख अच्छे से अच्छा विदेशीय राज्य मान्य नहीं।" यही कारण है कि प्रभु दयानन्द ने अपने जीवन का एक मुख्य भाग भारतीय राजाओं में प्रचार करने में व्यतीत किया। भगवान् दयानन्द के उपदेश श्रोताओं के मलीन हृदयों को प्रफुल्लित कर देते थे। ऋषि ने जहां जिस राज्य में पदार्पण किया, राजा प्रजा दोनों को ही उपदेश दिया। जिन आर्य पुरुषों ने ऋषि जीवनाध्ययन का आनन्द प्राप्त किया है, वे भली प्रकार जानते हैं कि भगवान् दयानन्द सदैव राज-वर्ग को राजनीति का परमपुनीत वैदिकोपदेश दिया करते थे। कितने ही राजों और राजकुमारों को ऋषिने मनु-स्मृति स्वयं पढ़ाई। राज्य के अन्दर उचित संशोधनादि करने का उपदेश भी भगवान् दयानन्द राजाओं को दिया करते थे। ऋषि दयानन्द धर्माचार्य थे किन्तु तिस पर राजधर्म और राज-नीति में पूर्णतया अभिज्ञ थे। बड़े २ पदाधिकारी अंग्रेज़ महा-शयों ने महाराज के व्याख्यान "राजनीति" विषय पर सुने।

उनकी उक्तियां, युक्तियां, और प्रयुक्तियां सुन कर बड़े २ विदेशी राजनीतिज्ञ चकित रह जाते थे। महाराज का समय राज-पुरुष तन्त्र शासन और दमननीति के यौवन का युग था। निर्भय स्वतन्त्र सन्यासी समयानुसार व्याख्यानों में तीव्र समालोचना कर राज्य-प्रणाली के गुण और दोष दर्शाया करते थे। महाराज की तीव्र से तीव्र समालोचना सुन कर भी बुद्धिमान राजा कर्मचारी कभी अप्रसन्न नहीं होते थे।

एक समय मुरादाबाद के कलेक्टर महाशय स्पेडिङ्ग ने स्वामी जी से राजनीति पर व्याख्यान देने का नम्र निवेदन किया। स्वामी जी ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। व्याख्यान का प्रबन्ध कलेक्टर महाशय की ओर से था। व्याख्यान मण्डप में प्रवेश करने के लिये टिकट वितरण किये गये थे। महाराज ने उस व्याख्यान में शासक और शासितों के सम्बन्ध का निरूपण किया। आपने शासन-नीति के पक्षपात आदि दोषों का वर्णन किया। कई घण्टों तक निरन्तर व्याख्यान होता रहा जिसे देशी विदेशी सभी दत्तचित्त हो कर सुनते रहे। व्याख्यान समाप्ति पर स्पेडिङ्ग महाशय ने खड़े होकर भगवान् दयानन्द की भूरि भूरि प्रशंसा की, और धन्यवाद के अनन्तर कहा कि "महाराज ने जो कुछ वर्णन किया है वह सर्वथा सत्य है। यदि इस नीति के अनुसार राजा प्रजा के सम्बन्ध होते तो जो कष्ट हलचल (Mutiny) में उठाने पड़े हैं वे कभी सामने न आते"।

योरोपीय राज-कर्मचारी भी क्या करते ? सत्य के दूत को कौन स्पष्ट कहने से रोक सकता है। बरेली में एक समय भगवान् दयानन्द पुराणों का खण्डन कर रहे थे। सभा में उपस्थित पादरी, कलेक्टर, कमिश्नर तथा अन्य योरोपीय महाशय पुराणों की समालोचना सुनकर खूब खिलखिला कर हँसते रहे। तत्पश्चात् ऋषि ने गम्भीरता पूर्वक ईसाइयों के ढोल की पोल का दिग्दर्शन कराया। 'ईसाई लोग कुमारी के पुत्र होना बता कर उसका दोष शुद्ध पवित्र परमेश्वर पर लगाते हैं। ये कैसे निर्बुद्धि और नीच पुरुष हैं। ऐसा घोर कर्म करते ये लोग तनिक भी लज्जित नहीं होते। ऋषि के यह वाक्य सुनकर कमिश्नर के कान खड़े होगये। कोपावेष में काया कपकपा उठी। दूसरे दिन लाला लक्ष्मीनारायण को बुला कर कहा कि 'आप पण्डित महाशय को कह दीजिये कि अधिक कठोर खण्डन से काम न लिया करें। हम ईसाई लोग तो सभ्य सुशिक्षित हैं। वाद-विवाद में नहीं घबराते। परन्तु यदि हिन्दू, मुसल्मान उत्तेजित होगए तो उनके व्याख्यान बन्द होजायेंगे'। स्वामी जी को यह सब समाचार ज्ञात होगया। अगले दिन के व्याख्यान का विषय 'आत्मा का स्वरूप' था। लगभग पहिले दिन वाले सभी योरोपीय सज्जन उपस्थित थे। व्याख्यान प्रसंग में ऋषि ने गम्भीर गर्जना सहित कहा कि "लोग कहते हैं सत्य का प्रकाश नहीं कीजिये। क्योंकि कलेक्टर कुपित हो जायगा। कमिश्नर प्रसन्न नहीं रहेगा। गवर्नर पीड़ा पहुँचायेगा।

अजी चाहे चक्रवर्त्ती राजा भी अप्रसन्न क्यों न होजाय, हम तो सत्य ही कहेंगे"। दयानन्द के इस सिंह-नाद से सारा भवन निनादित होगया। सभा में सन्नाटा छागया। दयानन्द ऋषिवर ने विद्युत के समान उद्दीप्त नेत्रों की ज्योति का चतुर्दिश संचार कर कड़क के कहा:—

"वह शूरवीर पुरुष मुझे दिखलाइये जो मेरे अन्तरात्मा को छिन्न भिन्न करने का घमण्ड करता हो। जब तक ऐसा पुरुष दृष्टिगोचर नहीं होता दयानन्द के लिये सत्य में सन्देह करना स्वप्न में भी असम्भव है"।

ऋषिवर निर्भयता की मूर्त्ति थे। देशोत्थान के लिए निर्भयता की सदैव आवश्यकता है। भगवान् दयानन्द एक आदर्श महात्मा थे, सन्मार्ग प्रदर्शक थे। यही कारण है कि आज संसार के सर्वोपरि आचार्य महापुरुष महात्मा गांधी स्वामी जी के विषय में लिखते हैं कि "मेरे पिता जो मुझे आत्मिक धन दे गये हैं, आवश्यक है कि मैं इसमें कुछ उन्नति करूं। तब ही कुटुम्ब का, जाति का, और देश का भला हो सकता है"। वर्त्तमान राजनीति क्षेत्र के सेनापति महात्मा गांधी का ऋषि को 'आत्मिक-बल प्रदान कर्ता पिता' मानना क्या अर्थ रखता है? स्पष्ट है कि आज जो जागृति भारत में दृष्टिगोचर होती है उसके प्रथम प्रवर्त्तक पिता दयानन्द ही थे।

भगवान् दयानन्द में अपार आत्मिक बल था। अपने व्याख्यानों में ईसाई-धर्म के आडम्बर की पोल खोलने में

तीक्ष्ण तर्क-तीर वर्षा में सदैव दत्त रहते थे। महाराज के आत्मिक बल का परिणाम था कि कोई भी किंचिन्मात्र ननुनच नहीं करता था। यदि कोई चूंचरा करने का साहस करता तो नीचा देखता था। पंजाब के एक नगर में ऋषि ने घोषणा कर दी कि कल ईसाइयों का खण्डन किया जायगा। व्याख्यान में सहस्रों देशी विदेशी सज्जन विद्यमान थे। सभा में प्रसिद्ध उपस्थिति प्रधान सेनापति (Commander in chief) लार्ड गवर्टस की थी। ऋषि ने उस दिन बाइबिल का कठोर खण्डन किया। किन्तु रुष्ट होना तो दूर रहा, सभापति महाशय अति प्रसन्न हुए। व्याख्यान के अन्त में उन्होंने ऋषि दयानन्द से हाथ मिलाया और कहा "आप निस्सन्देह निर्भय पुरुष हैं। हम लोगों की उपस्थिति में हमारे धर्म का खण्डन करते आप किंचिन्मात्र भी नहीं हिचके, तो भला दूसरों से आपको कब भय हो सकता है"।

आत्मिक-बल का आश्रय सत्यवादिता, ईश्वर विश्वास आदि महा गुण थे जिनके द्वारा ऋषि संसार में दया और आनन्द का संचार करना चाहते थे। ऋषि ने अपने जीवनादर्श से संसार को यह सन्देश सुना दिया है कि 'बिना धर्म के 'शांति निकेतन' की शरण प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है'। भारत का कल्याण भी तभी होगा जब भारतीय नेता गण अपने जीवन को क्रियात्मक जीवन बना कर आत्मिक-बल सम्पादन करेंगे। भारत यदि स्वतन्त्र होगा तो दयानन्द की

शिक्षा-पद्धति पर होगा। जब तक कोई देश अपनी ही त्रुटियों अपने ही दोषों से मुक्त नहीं होता तब तक उसका कल्याण किसी प्रकार नहीं हो सकता। स्वतन्त्रता, परतन्त्रता अपने वश में हैं स्वतन्त्रता में सुख है और परन्तत्रता में दुःख ही दुःख है। यदि संसार को सुख की आकाङ्क्षा है तो उसे वैदिक-धर्म के सम्मुख शिर अवनत करना होगा। वैदिक-काल में संसार सुखमय जीवन व्यतीत करता था। वेद-विमुख होने पर दुखों का गृह बन गया। दयानन्द उस वैदिक सुख को पुनः पृथिवी पर प्रचलित करना चाहते थे। मनुष्य मात्र के उपकार की अभिलाषा उनके हृदय में विराज रही थी। संसार के चाहे किसी भाग में भी अन्याय और अत्याचार हो, आर्य्य पुरुषों का हृदय हिल जाना चाहिये। दयानन्द रात दिन भारत की दीन दशा देखते थे। दुखियों का कातर क्रन्दन सुनते थे। उन्हें स्मरण था कि यह भारत कभी विभूति का भव्य-भवन था। ऐश्वर्य का स्थान था। शोभा और सुखों का क्रीड़ा धाम था। परन्तु आज भूख प्यास से पीड़ित हो विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहा है। भारतोद्धार के लिये ऋषि ने अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया। बड़े बड़े जातीय नेताओं की सभा की। अनेकानेक प्रस्ताव गवर्नमेन्ट के पास भेजे। अनेक उपयोगी उपदेश राज-पुरुषों को दिये। ऋषि जानते थे कि देश हित रक्षा के लिए स्वाधीनता अनिवार्य है।

राजस्थान में प्रचार करते समय ऋषि प्रत्येक राजा को उसका कर्तव्य बोध कराते थे। किसी प्रजा हितैषी के आलस्य युक्त होने पर उनको अपार दुःख होता था। जोधपुराधीश श्रीमान् महाराजा प्रतापसिंह को जो पत्र ऋषिने लिखा था वह भी इस प्रसंग में द्रष्टव्य है। स्वामी जी लिखते हैं कि "इस राज्य में सोलह लाख से अधिक मनुष्य बसते हैं। उनके रक्षण और कल्याण का भार आप लोग उठा रहे हैं। उनका सुधार बिगाड़ भी आप तीन महाशयों पर ही निर्भर है। मैं चाहता हूं कि आप लोग अपनी दिनचर्या मुझ से सुधार लें जिससे मारवाड़ तो क्या अपने आर्य्यवर्त्त देश भर का कल्याण करने में आप प्रसिद्ध हो जायँ।" ऋषि को देश-सुधार की चिन्ता सदैव रहती थी। इस का पर्याप्त पुष्ट प्रमाण उपरि लिखित पत्र है।

"स्वामी दयानन्द पूर्ण देश-भक्त थे और जब कभी इस देश की स्वाधीनता का इतिहास लिखा जायगा तो स्वामी जी का नाम उन महापुरुषों की प्रथम श्रेणी में अंकित होगा जिन्हों ने उन्नीसवीं शताब्दी में इस देश को स्वतन्त्र करने की नीव डाली।"× "ऐसे व्यक्ति का यदि कोई अपमान करेगा तो मैं इसे पाप समझूंगा।"+

आओ! हम सब मिल कर उस आदर्श महापुरुष के आगे अपना शिर झुका कृतज्ञता प्रगट करें।

× लाला लाजपतराय। +महात्मा गान्धी॥